UGC Approved - 45554 **Sangeet Galaxy**
Vol. 7, Issue. 1 (January 2018) pp. 41-51 **ISSN: 2319-9695**

बुनावट एवं बनावट, छत्तीसगढ़ी लोकगीतों की !
(चयनित गीत एवं गीत-विषयों का विश्लेषणात्मक अध्ययन)

प्राची दुबळे
अध्येता, भारतीय उच्च शिक्षण संस्थान, शिमला
wanderingpra@gmail.com

सारांश

भारत का नक्शा देखते हुए प्रतीत होता है कि छत्तीसगढ़ भारत के हृदय के एकदम समीप है. यह सर्व ज्ञात है कि उत्तर.. दक्षिण.. पूर्व.. पश्चिम चारों दिशाओं से भिन्न भिन्न समूह.. कबीले यहाँ आ बसे एवं इन सभी के बीच एक अद्भूत सांस्कृतिक आदान प्रदान होता रहा. इसी का प्रतिबिम्ब उभर आता है यहाँ के गीत संगीत में. यह शोधपत्र एक प्रयास है, छत्तीसगढ़ी लोकगीतों के ताने-बाने को और उनके इर्द गिर्द घूमती जटिल स्वर-लय-शब्द संगतियों को बूझने का.. साथ ही छत्तीसगढ़ी लोकगीत परंपरा भारत की अन्य संगीत परम्पराओं से किस प्रकार जुडी हुई है यह समझने का.

लोकगीत अपने अन्दर केवल एक विशाल संस्कृति ही नहीं संजोए रखते, बल्कि कई महत्वपूर्ण सामाजिक-राजकीय अर्थों को भी उजागर करते हैं. गतकाल को वर्तमान से जोड़ते हैं और 'लोक' को भविष्य के सपने भी दिखाते हैं. हर समय एक संक्रमण अवस्था से गुज़रने वाली यह गीत परंपरा हमेशा कोई सुखद अनुभव की निर्मिती करें यह आवश्यक नहीं, कई बार यह परंपरा अपनी व्यथा सुनाने को भी गीत रचती है. आज छत्तीसगढ़ी लोकगीत परंपरा किस प्रकार के संक्रमण से गुजर रही है? यह संक्रमण कैसे सांस्कृतिक बदलाव लेकर आया है? लोक मानस इस बदलाव को किस तरह देखता है? ऐसे ही कुछ प्रश्नों को संबोधित कर रहा है.. टटोल रहा है, यह शोधपत्र!

मुख्य शब्द - लोकगीत, लोकसाहित्य, छत्तीसगढ़, मौखिक परंपरा, आदिवासी संगीत

"तोला माती कोडल.. तोला माती कोडल..
तोला माती कोडल नइ आवत रे मीत, धीरे धीरे..
धीरे धीरे मोरे बयनी के मीत, धीरे धीरे..."

व्यंग से हँसते हुए, बड़ी सहजता से गणपति बाई यह बिहाऊ गीत गा रही थी.. मैंने पूछा : " आप क्यूँ हंस रही हो इतना?" तो और ज़ोर से ठहाका मार हंसी, बोली.. "समझी नहीं क्या? अरे यह चूलमाटी का गीत है, बियाह के मंगल प्रसंग के लिए मिट्टी लाने का रिवाज है यहाँ हमारे छत्तीसगढ़ में, कन्या की सहेलियां वर के साथ ठिठोली कर उसे छेड़ रही है.. कह रही है : अरे मोरी बहन के मीत.. तुझे इतनी सी मिट्टी खोदना भी ठीक से नहीं आता? ज़रा धीरे .. ज़रा धीरे .. क्या होगा नहीं तो बियाह के बाद?"

"ओह.. मिट्टी खोदना.. तो इसमें श्रृंगारिक सूचन है.." मैंने कहा. गणपति मुस्कुराकर बोली, " हाँ, यही तो लोकगीत है.." गणपति बाई मिली मुझे खैरागढ़ के पास स्थित गंडई नामक छोटे से गाँव में.. गणपति, यह एक स्त्री का नाम भी हो सकता है, यह देख मुझे आनंदाश्चर्यसा हुआ.. पर गणपति तो सदा चिड़िया की तरह चहकती रहती है, इसलिए लोग उसे चिरई बाई कहकर पुकारते हैं.. पति शराबी, कामधाम करता नहीं, दो बेटे बिमारी से मर गए, पर इसके चहेरे से मुस्कान हटने का नाम नहीं लेती.. चिरई वैसे तो खेतों में मज़दूरी कर के पेट पालती है, पर बाद में जानकारी मिली, उसका असली काम पुलिस के लिए मुखबिरी करना है.. (छत्तीसगढ़ जैसे कि हम सब जानते हैं, एक नक्सल संवेदनशील राज्य है!)

चिरई को मिलकर लगा, जैसे चिरई स्वयं एक अद्भूत गीत-विषय थी.

A unique song-text in herself. Not at all easy to unravel though!

शब्द.. संगीत.. सॉन्ग-टेक्स्ट, देखा जाए तो यह सारी एक दूसरे से भिन्न संज्ञाएँ हैं, फिर भी इन सब में एक गहरा सम्बन्ध है. मोटे तौर पर text का अर्थ पद, पाठ या शब्द हो सकता है, किन्तु text का एक महत्वपूर्ण अर्थ narrative - कथन, एवं theme - विषय, यह भी है.. अतः song-text को गीत-विषय कहा जा सकता है.. गीत-विषय में शब्द-विषय, लय-विषय, स्वर-विषय एवं भाव-विषय इन सभी का अंतर्भाव होता है. मेरा यत्न रहेगा कि प्रस्तुत शोध-पत्र द्वारा छत्तीसगढ़ में मुझे मिले कुछ अद्भूत गीत-विषयों से आप वाचक-मित्रों की भी भेंट करवाऊं.

गणपति ने ही आगे छत्तीसगढ़ी संस्कार गीतों में से एक अति प्रचलित ऐसा 'गौरा-गौरी' गीत सुनाया..

"जोहर जोहर मोरा गौरा गौरी.. सेंवरी लागौं तोर..
जोहर जोहर मोरा ठाकुर देउता.. सेंवरी लागौं तोर..
(ओ मोरे गौरा.. ओ मोरे ठाकुर देव..

जोहर जोहर.. प्रणाम करती हूँ.. सेवा में सादर हूँ..
मेरी अदनी सी सेवा का स्वीकार करो..)
ठाकुर देउता के मडीला छंवाए हो
दुलेओ परेवना के हंसा..."
(ओ ठाकुर देव, मैं तुम्हारा मंदिर सजाती हूँ..
देखो.. तुम्हारे मंदिर में हंस और परेवा दोनों.. साथ साथ नज़र आ रहे हैं..)

'हंस और परेवा साथ साथ..' बड़ी सरलता से यह गीत लोक संस्कृति के सर्वसमावेशक गुण को हमारे सामने रखता है.. ठाकुर गौरा, गौरी का पति.. इसकी स्तुती पर यह गौरा गौरी गीत गाया जा रहा है.. यह सर्वज्ञात है कि छत्तीसगढ़ एक आदिवासी बहुल राज्य है. देखनेवाली बात है, कि यहाँ के आदिवासी महादेव को गौरी के नाम से जानते हैं.. गौरा.
गौरागीत की बनावट (structure) को एकाध बार सुन कर लगा, शायद तीन-तीन के विभाजन से गा रही थी गणपति और उसकी सखियाँ.. पर नहीं, बार बार सुनने पर प्रतीत हुआ कि वे तो तक तकिट.. तक तकिट..1,2...1,2,3...ऐसे पांच पांच के विभाजन में इस गीत को गा रही थी. शास्त्रीय संगीत के उपासक यह बात भली भांति जानते हैं की तीन-तीन एवं चार-चार मात्राओं के छंद को निभाना और पांच पांच के विभाजन को निभाना इसमें कितना अंतर है ! किन्तु गणपति इस शास्त्रीय दृष्टिकोण से परे, अपनी अंदरूनी लय को निभाते हुए, बिना किसी अभिनेवेश बस.. गाये जा रही थी.. गणपति के गायन से लोकगीतों की यह विशेष बात उभर कर आती है कि 'लोक' में जटिल से जटिल बात भी सहजता से कहने का गुण होता है.
'लोक' के अनेक अर्थों में से एक अर्थ है शरीर - प्रकृति.. मैंने पाया यह आदिवासी एवं लोकगीत अंतर्बाह्य अपनी प्रकृति से जुड़े हुए हैं.. "जहा अन्तो तहा बाहो" इस बुद्ध वचनानुसार यह गीत स्वयं के अन्दर और बाहर की प्रकृति को प्रतिसाद देते हुए अनेकानेक रूपक गढ़ते हैं.. छत्तीसगढ़ का 'सुवा' गीत एक ऐसा ही रूपक है.. सुवा का अर्थ है तोता, घर घर में इसे पाला जाता है.. और वह घर की स्त्री का मीत.. मित्र - उसके सुख दुःख का साथी बन जाता है.. उससे वार्तालाप करते हुए स्त्रियाँ सुवा गीत रचती हैं.. गाती है.. नाचती हैं.. लोक परम्परा में गायन वादन एवं नर्तन अभिन्न होते हैं. एक साथ ही इन तीनों का आविष्कार होता है.. "गीतं वाद्यम तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते !" गीत, वाद्य तथा नृत्य के मिलाप से संगीत प्रकटता है, शारंगदेव ने १३वी शताब्दी में रची इस व्याख्या के प्रचलन से बहुत पहले ही लोक धाराओं में इन तीनों के एकत्रित आविष्कार होते रहे हैं..

गणपति जैसी और एक अद्भूत गायक, सरस्वती..सुवागीत गा रही थी..

“तरी हरी नाना मोर नाना सुवाना
मैं का जानूं मैं का करौं मोरे राम नै हे ओ..
मोर सीता ला ले जात है लंका के रावण हो
मैं का जानूं मैं का करौं मोरे राम नै हे ओ..”

(तरी हरी नाना... अरे मोरे सुवाना... देखो तो लंका के रावण मोरी सीता को ले जा रहे हैं.. पर मोरे राम तो है ही नहीं.. मैं क्या करूं?) आगे जा कर मैंने पाया, छत्तीसगढ़ के कई गीतों में रावण का सीता को उठाकर ले जाना, और राम का वहां न होना.. एक महत्वपूर्ण रूपक है.. उपरोक्त सुवा तो एक तेज़तर्रार लय में चार चार के विभाजन से गाया जाता है.. गायक राकेश तिवारी जी ने एक ‘सुवा’ सुनाया :

“तरी हरी नाना.. मोर नाना री सुवाना ..
के तिरिया जनम झनी दे.. ना रे सुवाना के तिरिया जनम झनी दे..
तिरिया जनम मोरे, गऊ के बरोबरे ना रे सुवाना
के जहं पठवय तहं जाय..”

इस गीत का पोत, इसकी बुनावट... (texture) कैसी है? अति विलंबीत लय में, करुण स्वर में गाये जाने वाला यह सुवा कहता है: “मोरे मित्र, सुवा.. मुझे स्त्री का जन्म मत देना.. यह स्त्री का जन्म भी कैसा है? एक गाय जैसा.. खींच कर जहां मर्जी ले गए.. क्या फ़र्क है? स्त्री में और गाय में? तो मुझे स्त्री जन्म मत देना..”

हर सुवागीत का प्रारंभ ‘तरी हरी नाना’ से होता है, ‘तरी हरी नाना’ जैसे सुवागीत की पहचान है.. मैंने सरस्वती से पूछा, ‘तरी हरी नाना’ का अर्थ क्या है? उसने कहा : “तरी हरी नाना”.

सरस्वती का यह उत्तर लोक एवं शास्त्र, देश एवं मार्ग, आदिम एवं अभिजात संगीत के अन्तःसम्बन्ध को उजागर करता है.. लगा सरस्वती का ‘तरी हरी नाना’ एक ‘तराना’ ही तो है.. त न री री नोम तोम दीर दीर... ऐसे अनेक निरर्थक परन्तु गेय शब्दों की रचना कर उन्हें संगीताशय से गठित करना.. यह मार्गी परंपरा निर्मित तराने का कार्य, देशी परंपरा पहले ही निभा चुकी है.. ‘तरी हरी नाना’ का ‘सुवाना’ के साथ प्रास बिठा, आगे पूरा गीत गाया जा रहा है..

उपरोक्त उदहारण से यह बात स्पष्ट हो जाती कि देशीय एवं मार्गीय संगीत परम्पराओं का परस्पर सम्बन्ध द्वंद्वात्मक (binary) नहीं है. इनमें हमेशा से एक संवाद और सर्जक आदान प्रदान रहा है.. छट्ठी शताब्दी में मतंग ऋषि ने जब पहली बार अपने ‘बृहद देशीय’

इस ग्रन्थ में 'देश एवं मार्ग' ऐसी विधाओं का उल्लेख किया तब शायद वो तत्कालीन विश्व के अनगिनत ध्वनी, स्वर, नाद एवं धुनों की एक सुविहित व्यवस्था निर्माण करना चाहते थे.. ना कि उनमें द्वन्द निर्माण करना.

कई बार ऐसा देखने को मिलता है, कि भक्ति एवं उपासना पर गीत इन दोनों विधाओं 'देश एवं मार्ग' का बड़ा अद्भूत मिलाप कराते हैं. इसका सुन्दर उदाहरण है छत्तीसगढ़ी मातासेवा गीत, जिसे जसगीत भी कहते हैं, इसमें शक्ति की उपासना होती है.

" का मां सिरजाबो तोहरे रहिया?
रतनपुर मोरे का मां हो सिरजाबो हिन्जा लागे हो मां..
ओ मैया का मां हो सिरजाबो हिन्जा लागे हो मां.."

भक्त पूछ रहा है, "ओ मोरी मैया.. कहो तो, मैं तुम्हारा सृजन कैसे करूं? किससे करूं? किसमें करूं? क्या मैं तुम्हारी मूरत मिट्टी से बनाऊ या ईंटो से बनाऊं? क्या मैं तुम्हें चन्दन का लेप दूँ या बंदन का?" बंदन याने सिन्दूर..

लोकमानस इस बात को खूब अच्छी तरह समझता है कि मनुष्य ही ने ईश्वर का निर्माण किया, अतः मनुष्य उसे स्वयं जैसे ही गढ़ने का यत्न करेगा. मनुष्य का ईश्वर से जो सम्बन्ध है, वह इतना जटिल नहीं जितना मनुष्य का अपने कर्मों से है. छत्तीसगढ़ी गीत प्रकार "कर्मा" इस जटिलता को बड़ी संगीतमयता से उजागर करता है.

छत्तीसगढ़ी लोक-कलाकार कर्मागीत के बारे में बताते हुए कहते हैं, करम देवता या कर्मी देवी क्या है जिनके लिए यह गीत रचे जाते हैं? यह देवता देवी अपने ही कर्मों का है प्रतिबिम्ब. छत्तीसगढ़ में सब से लोकप्रिय कर्मागीत है देव्हार कर्मा. देव्हार जनजाति जो भ्रमणशील 'लोक' हैं, जो भ्रमण करते हुए विश्व का निरीक्षण करते हैं और अद्भूत दर्शन से भरे कर्मागीत रचते हैं...

"माते रहिबे माते रहिबे माते रहिबे गा...
कैसे माते रहिबे गा अलबेला मोर..
गठिया गंजाला पी के माते रहिबे..
हो...पानेंला खांये मुहुला करे लाल..
मुहुला करे लाल जीव लेवा मोर..
मया झन करबे हो जाहि जी के काल.."

(मस्त रहो.. मस्त रहो.. गठिया और गांजा पी कर मस्त रहो... फानी दुनिया में उलझ कर क्या मिलेगा? जैसे पान खाने से मुंह लाल हो ही जाता है, वैसे ही मया - प्रेम करने से मन दुख्ख ही दुख्ख से भर जाता है..)

छत्तीसगढ़ी गीत परम्परा में मया.. यानि की प्रेम के अनेकानेक आविष्कार देखने को मिलते हैं.. जैसे प्रेम का एक रंग मिलन, श्रंगार.. इनका उत्सव करने वाला गीत 'ददरिया'.. तो जुदाई के रंग को गहराई से प्रकट करने वाला बिरहा गीत है.

भिलाई की पुष्पलता जी से मैंने सुने कई ददरिया गीत. ददरिया मनुष्य के उत्कट प्रेम की कहानी सुनाता है. शायद यही वजह है कि ददरिया को छत्तीसगढ़ी गीतों की रानी भी कहते हैं..

"एक पेड़ आमा.. छत्तीस पेड़ जाम ...
छत्त रंगीला.. ओ छैला तें ओढा दी.. रे दोर.."

यहाँ नायिका अपने प्रियतम से कह रही है.. " जैसे यह आम और जाम के पेड़ है और वे घनी छाँव दे रहे है.. उसी तरह तुम हमेशा मुझे अपने प्रेम की छाया देते रहना ..."

होली के समय गाये जाने वाले फाग भी प्रेम और श्रृंगार से भरपूर गीत होते हैं.. रायपुर के राकेश जी ने बड़े ही रसीले फाग सुनाये.. जिसमें अद्भूत रूप से राजा - महाराजाओं का सामान्यीकरण, मानवीकरण होते दिखाइ पड़ा.

"बिकरमादित्य महाराजा, घेंवरा नई है तोरे बागो में...
अरे तहू हो गे लाले लाल महू हो गे लाले लाल गजमुह..
आजे लागे रंगे हो गुलाल.. अरे गजमुह .. आजे लागे रंगे हो गुलाल"

पूरा छत्तीसगढ़ होली के रंगों में डूब एक जादुई वातावरण की निर्मिती करता नज़र आता है.. मजेदार बात यह है की फाग गायन करते समय पुरुष मंडलियाँ स्त्रियों को प्रवेश नहीं देती.. मैंने पूछा क्यूँ? तो छत्तीसगढ़ी संस्कृतिकर्मी पी. सी. लाल यादव जी हंस दिए, बोले: "गांजा भांग लगा कर मस्ती में झूमता हुआ पुरुष वर्ग कभी कभी मर्यादाओं का उल्लंघन कर जाता है. हो सकता है कि स्त्रियों की गरिमा पर चोट आ जाए, इसी वजह से बुजुर्गों ने यह परंपरा निर्माण की कि होली के समय होने वाले फाग गायन में स्त्रियों का प्रवेश वर्जित हो!"

प्रेम रस से ओतप्रोत फाग सुनने के बाद कांकेर की अनुराग चौहान से सुना ब्याकुल करने वाला बिरहा.. श्रृंगार का ही और एक अनूठा रूप.. बिरहा.. बिरहा की दास्तान कौन नहीं जानता? उत्तरप्रदेश, बिहार, झारखण्ड, मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ इन सारे राज्यों में बिरहा गाया जाता है.. लोक संस्कृति अपने नक़्शे अलग से रचती है, उसका राजकीय नक्शों से

नाता हो ही, यह ज़रूरी नहीं.. अंग्रेज़ों द्वारा गुलाम/बंधुआ मज़दूर बनाए गए 'गिरमिटिया' अपना वतन तो छोड़ गए, पर पीछे रही उनकी औरतें.. उनके परिवार.. राह देख थकी आँखों ने रचे बिरहा.. पर बिरहा की कहानी यहाँ ख़त्म नहीं, शुरू होती है. भले ही 'गिरमिटिया' गुलामी प्रथा समाप्त हो गई हो. पर बिरहा कभी समाप्त नहीं होता. गाँव छोड़ रोजी रोटी पाने शहर जाने वाले अनगिनत मजदूरों के परिवार जो गाँव में ही रह गए, उनमें बिरहा की व्यथा आज भी जीवीत है.. 'लोक' बिरहा सुनाते कभी नहीं थकता.. क्यूंकि जीवन की बुनियादी सच्चाईयों में से एक है - बिरहा.

"धनी बिना जग लागे सुन्ना रे
नई भावे मोला, सोना चांदी महल अटारी
घर बन बैरी लागे, गली गाँव कुल्लुप लागे
अनपानी जहर भईगे, बोली हंसी जुलुम लागे
तन मन ह लागत हाबी घुन्ना रे
नई बाचय चोला, धधकत हे छतीया मां आगी"

बिरहा गीत की व्यथा कथा सुनते सुनाते छत्तीसगढ़ी लोक-कलाकार प्राचीन समय से गाई जाने वाली 'भरथरी गाथा' सुनाने लगते हैं. गाथा माने गाई जाने वाली कथा.

"घोडा रोवैं घोडसारी मां घोडसारी मां हो हाथी रोवै हाथीसारी मां
ओ... मोरे रानी ओ.. महलों मां रोवै.. मोरे राजा रोवै दरबारी ओ..
दरबारी ओ.. बाई ए जी जी.."

छत्तीसगढ़ कई अद्भूत गाथाओं से समृद्ध है.. उन्हीं में से एक है, भरथरी.

यह कहानी है राजा भरथरी की. एक बार भरथरी राजा के राज्य में एक ब्राह्मण ने घोर तपश्चर्या कर कल्पवृक्ष से पाया अमरफल. फल पाने के पश्चात ब्राहमण ने सोचा, मैं और मेरी तपश्चर्या, दोनों राजा भरथरी के आश्रित हैं, न मेरा, केवल राजा का है हक़ इस अमरफल पर. उसने बड़े प्रेम से वह फल राजा को प्रदान किया. राजा भरथरी ने सोचा, क्या मैं अधिकारी हूँ इस फल का सचमुच? मेरा होना तो मेरी प्यारी छोटी रानी पिंगला की वजह से है. और राजा बड़े प्रेम से वह फल रानी पिंगला को प्रदान करता है. पर रानी पिंगला तो बड़ी गहराई से सेनापति महिपाल के प्रेम में डूबी है. रानी बड़े प्रेम से फल प्रदान करती है सेनापति महिपाल को. और महिपाल? महिपाल चाहता है दासी लाखा को. बड़े प्रेम से महिपाल दासी लाखा को वह फल प्रदान करता है.. दासी लाखा.. दासी लाखा तो सम्पूर्ण समर्पित है राजा भरथरी को... बड़े प्रेम से दासी राजा को फल प्रदान करती है. यात्रा करते

करते अमरफल पुनः राजा के पास.. और.. राजा पूरी कहानी जान जाता है.. रानी पिंगला के परपुरुषगामी होने का ज्ञान होते ही राजा का चित्त संताप से, क्रोध से भर जाता है. वह शीघ्र ही रानी के शिरच्छेद की आज्ञा देता है... देह दंड. परन्तु, रानी के मृत्यु के पश्चात राजा गहरी सोच में डूब जाता है.. धीमे धीमे वह इस परम सत्य तक पहुँच ही जाता है कि संसार में मैं किसी का हूँ, ना कोई मेरा.. इस प्रतीति के होते ही राजा में वैराग्य जागता है और वह राजपाट छोड़ सन्यासी बन जाता है. यही भरथरी, नाथ सम्प्रदाय के महान संत भरथरी कहलाये. आज भी छत्तीसगढ़ के हर चौक में बड़े प्रेम से भरथरी गाथा गई जाती है.

पारम्पारिक गीतों की इस लम्बी कहानी के चलते अनेक प्रश्न मन में उठते हैं.. जैसे : "परंपरा क्या है? इसमें बदलाव की क्या गुंजाइश है? और अगर बदलाव है तो किस प्रकार का है. लोकगीतों की बनावट एवं बुनावट में क्या अंतर आया है.." दक्षिण भारत के महान संगीतज्ञ एम्. बालमुरलीकृष्णन कहा करते: "There is no Tradition without Addition!" परिवर्धन के बिना परंपरा अधूरी है.. किन्तु इसी विधान का कई बार विपर्यास होते दिखता है जब गीत 'लोक' विधा में से 'लोकप्रिय' विधा में प्रवेश करते हैं..

छत्तीसगढ़ी लोक संगीत की विश्व भर में जिस लोकगीत के कारण चर्चा हुई वो है -

"करार गोंदा फूल.."

सास गारी देवे, ननंद मुंह लेवे, देवर बाबू मोर..

सैंया गारी देवे, परोसी गम लेवे, करार गोंदा फूल..

केरा बारी में डेरा देबो चले के बेरा हो.."

दिल्ली-6 नाम की हिंदी फिल्म में इसी लोकगीत का लोकप्रिय अवतरण "ससुराल गेंदा फूल" पाया जाता है. वही धुन, पर शब्द कुछ अलग दिए गए और गाने का परिवेश पूरी तरह से बदल दिया गया..

The Folk Text was transformed into a completely Popular Text.

इस गाने की लोकप्रियता ने फिल्म से जुड़े लोगों को अपार शोहरत और दौलत दिलवाई.. इस कारण छत्तीसगढ़ी लोक-कलाकार खूब व्यथित हुए, उन्हें लगा कि सफलता की इस दास्तान में उनका और छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति का कहीं कोई नामोनिशान नहीं दिखा. ऐसा किसी लोकगीत के साथ पहली बार नहीं घटा. लोक-कलाकारों की इस व्यथा के बारे में सोचा जाए तो कई मुद्दे उभर कर सामने आते हैं.

'लोकगीत' परंपरा एक अनाम परंपरा है. उसपर किसी का नाम नहीं लिखा होता. लोक की समुच्चयित चेतना से उजागर होते हैं लोकगीत, इसीलिए वह सब के हो जाते हैं. और जैसा

कि हम जानते हैं, जो सब का है वह किसी का नहीं.. किसी एक का तो हरगिज़ नहीं.. ऐसे में लोक-कलाकार कहें तो भी कैसे कहे की यह मेरा है? हमारा है? लोक कलाओं के मामले में सर्वाधिकार, copyright यह बड़ा जटिल मुद्दा बन कर रह गया है. सौभाग्य से कला-सर्वाधिकार के मुद्दे पर भारत के जाने माने संगीतज्ञ डॉ. अनीष प्रधान एवं पंडिता शुभा मुद्गल, यह दोनों बड़ी धीरज और लगन से ठोस कार्य कर रहे हैं जिससे कि कलाकारों को अपना अधिकार मिल सकें. किन्तु केवल सर्वाधिकार न मिलना यही एक समस्या नहीं है 'लोक' की, शहरी 'विकास' का दबाव, लोक-कलाकारों की रोज़ी रोटी का प्रश्न, सरकार का दोहरा रवैया.. (एक तरफ तो लोक-कलाकारों को तथाकथित मुख्यधारा में लाने का आग्रह, उन्हें राष्ट्रीय लोकोत्सवों में प्रदर्शनीय बनाना, तो दूसरी ओर 'लोक' अपनी सांस्कृतिक एवं प्रांतीय प्रतिभा एवं पहचान बनाये रक्खे यह अपेक्षा..) इस खींच तान में लोक की अस्मिता धूमिल होती नज़र आ रही है. ऐसे कोलाहलपूर्ण वातावरण में एक संशोधक का उसकी संवेदनशीलता बनाये रखना अत्यावश्यक हो जाता है.

यहाँ पर छत्तीसगढ़ में अपने मार्गदर्शक श्री बी. आर. साहू जी से सुनी हुई यह लोककथा आपके साथ बांटना आवश्यक समझती हूँ. यह एक संशोधक की कथा है. लोकगीतों के वर्तमान एवं भविष्य पर बड़ी गहराई से भाष्य करती है !

एक बार लोकगीतों का एक संशोधक एक गाँव में जाता है, लोकगीतों की खोज करने.. उनका अभ्यास करने. गाँव में चलते चलते उसे एक बुढा बाबा मिल जाता है. यह संशोधक बूढ़े बाबा को पूछता है, बाबा.. मैं यहाँ लोकगीतों की खोज में आया हूँ.. मिल तो जायेंगे ना मुझे लोकगीत? बुढा बाबा सर उठा कर संशोधक की ओर देख कर हंसता है.. कहता है : लोकगीत? क्यूँ नहीं? ज़रूर मिलेंगे बेटा.. वो देखो.. दूर तुम्हें राजा का महल दिखाई दे रहा है? वहां जाओ.. महल के अन्दर तुम्हें ढेर सारे लोकगीत मिल जायेंगे.. यह सुन संशोधक झुंझला उठता है, कहता है यह क्या बात हुई बाबा? मैं लोकगीतों की खोज में आया हूँ और आप मुझे राजा के महल में भेज रहे हो? बुढा बाबा हंसता है.. कहता है : देखो बेटा, लोकगीत क्या है? जैसे कि.. समझो कोई किसान अपने खेत में एक बीज बोता है, उसकी सिंचाई करता है.. धीरे धीरे फसल उगती है.. फिर वह लहलहाने लगती है.. और खेत फसल से भर जाता है, तब किसान का हृदय भी आनंद से भर जाता है.. और उसके कंठ से कुछ आनंद लहरें, इक धुन फूट निकलती हैं.. वही आगे जाकर धीमे से एक गीत बन जाता है... धीरे धीरे उसके बच्चे, बच्चों के बच्चे.. सब उसे गाने लगते हैं.. और नयी धुनें.. नए गीत उस धारा में जुड़ने लगते हैं.. यही तो है, लोकगीत! लेकिन, अब तो तुम देख ही रहे हो..

जिस पर हम खेती करते हैं वो ज़मीनें, गिरवी पडी है राजा के पास.. उसके महल की तिजोरी में! साथ साथ हमारे सारे गीत भी बंद हैं, वहीं ! तो जाओ.. हो सके तो खोलो वो तिजोरी.. और निकाल लाओ बाहर, लोकगीत!

कहानी में बयां की गयी इस दुःखदाई वास्तविकता के बावजूद यह बड़े सुखद आश्चर्य की बात है कि लोक संगीत अब भी अपने आप को ज़िंदा रक्खे हुए है.. और जीवित हैं सारे गीत-विषय भी!

बिहाऊ, गौरा-गौरी, सुवा, मातासेवा, ददरिया, फाग, बिरहा, भरथरी, गोंदाफूल... इन सारें गीतों का स्वर-विषय देखें तो एक महत्वपूर्ण बात सामने आती है.. यह सारे गीत एक विशेष धुन से आपस में बंधे हुए हैं.. छत्तीसगढ़ के मैदानी क्षेत्र में गाये जाने वाले यह भिन्न भिन्न गीत प्रकार एक ही धुन से जुड़े हुए हैं.. यह धुन चहेरा है छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का.. अगर शास्त्रीय संगीत के दृष्टिकोण से इन्हें सुने तो यह धुन इस प्रकार सुनाई देती है?

ध़ सा रे गS रे, गS रे सा सा सा रे..

सा रे म प़.. धनि धनि ध प़ .. म ग रे..

गरे ग़ रे .. ग़ रे ..सारेरे सा..

यह स्वर सुनकर शास्त्रीय संगीत एवं मार्गीय परम्परा का कोई कलाकार कहेगा: अरे यह तो सोरठ रागिणी है.. तो कई कहेगा नहीं, यह तो राग प्रतापवराली जैसे दिखता है.. ऊपर के स्वरों को सुन के कोई कहेगा यह तो झिन्झौटी लगता है.. यह सारे अवलोकन सही है.. पर इस बात को समझना आवश्यक है कि लोकधुन इन सारे शास्त्रीय अवलोकनों से किसी भी प्रकार बंधी हुई नहीं है.. क्यूंकि उसका उद्देश्य किसी राग की निर्मिती करना कतई नहीं, बल्कि भिन्न भिन्न गीत-विषयों को निभाना, उन्हें समृद्ध करना है.

यह बात याद रखना आवश्यक है कि हर शास्त्र की अपनी सीमाएं हैं.. लोकसंगीत के अपने सूक्ष्म स्वरलगाव है.. जटिल लयबंध हैं.. इसलिए समग्र 'लोक' पर शात्रीय अवधारणाओं को आरोपित करना अनुचित होगा. जब तक की 'लोक' गीतों को लिखने के लिए एक स्वतंत्र लिपि/शैली का निर्माण नहीं होता, तब तक अध्ययन सुविधा के लिए संशोधक शात्रीय संगीत स्वरलिपि में लोकगीतों को लिखने का यत्न करते रहेंगे.

शास्त्रकार इस मर्यादा को भली भांति जानते थे, यही कारण है कि, भरतनाट्यशास्त्र के अंतिम अध्याय में उधृत किया गया - "शास्त्र से जुड़े प्रश्न अंतहीन रहेंगे.. जब शास्त्र के पास उपलब्ध सारे उत्तर समाप्त हो जाएँ, तो शास्त्र को पुनः 'लोक' की तरफ मुड़ना होगा, 'लोक'

के आंगन में खिले गीत-विषय ही शास्त्र को उसके अनगिनत प्रश्नों के सार्थक उत्तर खोजने में सहायता करेंगे!"

सन्दर्भ - प्रस्तुत शोधपत्र का मुख्य आधार वर्ष 2012, फरवरी एवं मार्च में लोक संगीत के संकलन एवं दस्तावेजीकरण के लिए छत्तीसगढ़ में हुए क्षेत्र भ्रमण, कलाकार एवं संस्कृतिकर्मियों से हुआ वार्तालाप है. प्रस्तुत शोधपत्र में लिखा गया हर गीत लेखक ने छत्तीसगढ़ में स्वयं दस्तावेजित एवं ध्वनिमुद्रित किया है, यही कारण है कि इस शोधपत्र के साथ अलग से कोई सन्दर्भ ग्रन्थ सूची नहीं जोड़ी गई है. इस पत्र में चर्चित सारे विषयों की यथार्थता का पूरा उत्तरदायित्व लेखक, और केवल लेखक का है.